समाज में नारी का स्थान

समाज अथवा राष्ट्र के विकास में स्त्री और पुरुष का समान महत्त्व होता है। इसी कारण इन दोनों को एक साथ अनेक संज्ञाए दी गई हैं, यथा- जीवन को अगर रथ मान लिया जाए, तो ये दोनों उसके दो पहिए है। जिनके एक समान चलने पर ही आनन्दमय जीवन बनता है। एक अन्यसन्दर्भ में इन्हें नदी के दो तट कह सकते हैं, जो सदैव साथ रहते हैं तथा दोनो के बीच में जीवन की धारा प्रवाहित होती है। वेद में स्त्री को पृथिवी तथा पुरुष को धुलोक की संख्या दी गई है। इन दोनों के मध्य संतति का आविर्भाव ही समाज को अग्रसर रखने की दिशा प्रदान करता है।

2.1. विभिन्न युगों में नारी की सामाजिक स्थिति

आदिम काल से विभिन्न काल खण्डों में इतिहास क्रम की प्रक्रिया में नारी की स्थिति को जानना चाहते हैं, तो पहले विभिन्न काल खण्डों को विभक्त करना आवश्यक है और ये हैं-

1. ऋग्वैदिक काल

2. उत्तर काल

3. सूत्रकाल

4. स्मृति काल से गुप्तकाल तक

(1) ऋग्वैदिक काल - ऋग्वैदिक युग में नारी का जीवन सुखी, स्वतंत्र एवं विकासोन्मुखी था। वह दुहिता, माता, पत्नी आदि के रूप में सम्मान की पात्र रही, इस कारण परिवार का केन्द्र बिन्दु भी नारी को ही माना जाता था। अगर हम कहें कि तत्कालीन समाज मातृसत्तात्मक था तो इसमें भी अतिश्योक्ति नहीं होगी। यहाँ नारी को पुरुषवत् सभी अधिकार प्राप्त थे। तत्कालीन जीवन संघर्ष में नारी भी पुरुष के समकक्ष ही सामाजिक आर्थिक दायित्वों में अपना योगदान देती थी। अत: समाज में नारी की स्थिति आदरणीय थी। स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार होने के कारण ही वैदिक युग में अनेक स्त्रियाँ ब्रह्मवादिनी या ऋषिकाएँ थी।" सर्वानुक्रमणि में ऐसी 20 ऋषि स्त्रियों के नाम उपलब्ध होते हैं, जिन्होंने वैदिक सुक्तों की रचना की, जैसे- लोपामुद्रा विश्ववारा' सिकता निवावरी", घोषा", अपाला, श्रद्धा, अदिति, कामायनी, देवयानी, आत्रेयी, गार्गी, मैत्रेयी आदि। ऋग्वेद में ही सरस्वती को वाणी की देवी कहा गया है, जो कि तत्कालीन नारी के शास्त्र एवं कला क्षेत्र की निपुणता को प्रकट करती है। वैदिकयुग में स्त्री पुरुष की शिक्षा समान स्तरीय होती थी। विवाह के पूर्व पुत्रो के ही समान उनका उपनयन किया जाता था। सम्पूर्ण शिक्षा को प्राप्त कर तदन्तर विवाह करती थी तथा कन्या को स्वयं वर को वरण करने की अनुमति थी। इसके साथ गान्धर्व विवाह भी प्रचलित था। यहाँ पति के साथ पत्नी को गृहस्थी की संयुक्ता या स्वामिनी कहा गया है। ऋग्वेद के विवाह सूक्त में पुरोहित नववधू को - सास, ससुर, नन्द आदि सबमे सम्राज्ञी बनने का आशीर्वाद देता है। पुरुष का समान्यतया एक स्त्री से विवाह करना पत्नीव्रत का सामान्य नियम था। आजीवन कुमारी रहने का भी अधिकार प्राप्त था, ऐसी कन्या को 'अमाजुः' कहा जाता था।

तत्कालीन समाज मे पर्दा प्रथा, सती प्रथा आदि का कोई प्रसंग प्राप्त नहीं होता। ऋषि स्वयं पुनर्विवाह तथा नियोग का समर्थन करते हैं। हालांकि सभी के आर्थिक अधिकारों का कोई स्पष्टतया संकेत नहीं मिलता और न ही राजनैतिक अधिकार की चर्चा है, परन्तु ऋग्वेद में नारी 'सम्राज्ञी' की संज्ञा जरूर प्राप्त है।

(2) उत्तर वैदिक काल इस युग में नारी की स्थिति में समाज के परिवर्तन के साथ ही परिवर्तन हुए, यहाँ उसकी स्थिति निम्नतर होती गई। ब्राह्मण ग्रन्थों में पुत्रों की उपेक्षा पुत्री को हीन घोषित किया, जिससे पता चलता है कि समाज पितृसत्तात्मकता की तरफ परिवर्तित हो गया। हालांकि कन्याओं की शिक्षा का प्रचार तथा उनका उपनयन होता था और उनके द्वारा अध्ययन भी किया जाता था, परन्तु धीरे-धीरे उच्च अध्ययन से उन्हें दूर रखा जाने लगा। उन्हें धर्म, दर्शन के साथ-साथ नृत्य एवं गायन की भी शिक्षा दी जाती थी । इस युग में विवाह युवास्था में तथा स्वयंवर विधि से भी होता था। पुनर्विवाह की भी अनुमति थी," परन्तु पुरुषों में बहुविवाह महिषी (पटरानी), प्रचलित हो गया था। राजा की रानियों के नाम यथा वाताता (सर्वाधिक प्रिय), परिवृक्ति (उपेक्षिता) एवं पालागली (राजकीय अधिकारी की पुत्री) आदि नामकरण उनकी सामाजिक स्थितियों को प्रकट करने लगे।

जिससे पता चलता है कि स्त्रियों की स्थिति पतन की ओर जा रही थी। सार्वजनिक संस्थाओं, जातीय परिषदों में स्त्रियों का भाग लेना प्रायःसमाप्त होने लगा था तथा शिक्षा की न्युनता के कारण भी वो अपने अधिकारों को कम ही समझ पाती थी। कर्मकाण्ड की जटीलताओं तथा ऋतुधर्म की अपवित्रता ने उन्हें शुद्रों की श्रेणी में ला दिया। इस प्रकार धीरे- धीरे यज्ञ सम्बन्धी अधिकार छिनना प्रारम्भ हो गए। अतः पता चलता है कि स्त्री-पुरुष की जिस सहभागिता को वैदिक युग में अपनाया गया, उत्तर वैदिक काल में उसका धीरे-धीरे हरण हो रहा था और जो सहभागिता की भावना सामाजिक जीवन का सार थी, वह परिवर्तित होने लगी थी।

(3) सूत्रकाल - तत्कालीन कुछ ग्रन्थों में हालांकि नारी की प्रशंसा प्राप्त होती है, तो कुछ ग्रन्थ स्त्री की निन्दा करते हैं। इस काल में भी प्राय: उत्तर वैदिक काल के समान ही स्थिति रही, परन्तु यहाँ नारी की स्थिति धीरे-धीरे और निम्नतर होती गई। एक पुरुष को विभिन्न वर्गों को नारियों को रखने का अधिकार भी प्राप्त होने लगा। याज्ञवल्क्य की दो पत्नियाँ गार्गी और मैत्रेयी के संवाद भी यह सिद्ध करते हैं कि शिक्षा अभी भी ग्रहण की जा रही थी। बौद्धिक समता को उच्च करने के लिए गर्भवती को विशेष प्रकार के भोजनों का सेवन भी कराया जाता था। सूत्रकालीन साहित्य में विवाह के विषय में भी विवाह आयु सम्बन्धी विविध धारणाएँ पनपने लगी थी। तत्कालीन समाज में आठ प्रकार के विवाह की प्रथा प्रचलित हो गई-

(1) ब्राह्म, (२) देव (3) आर्ष (4) प्राजापत्य (5) आसुर (6) राक्षस (7) गान्धर्व (8) पैशाच

पारस्करगृह्यसूत्र में विवाह के पश्चात् तीन रात्री तक ब्रह्मचर्य पालन व्रत का वर्णन भी मिलता है, जिससे यह भी अनुमान लगाया जाता है कि विवाह युवावस्था में होता था। इसके साथ-साथ विवाह में दहेज का प्रचलन भी प्रारम्भ हो चुका था। ब्राह तथा दैव दोनों प्रकार के विवाह में पिता, पुत्री को अलंकृत करके विवाह करता था। गोभिल गृह्यसूत्र अनुसार नग्निका कन्या से विवाह को श्रेष्ठ माना गया है, यहाँ नग्निका के दो अर्थ दिखाई पड़ते हैं- पहला वह कन्या जो लज्जा नहीं करती। दूसरा अभिप्राय- वह जो संभोग के योग्य थी। धीरे-धीरे समाज के परिवर्तित होते रूप ने बाल-विवाह को भी विवाह का हिस्सा बना दिया। हालांकि कुछ अन्य तथ्य भी मिलते हैं, जहाँ नारी का सम्मान किया जा रहा था। अब समाज उसे गृहस्थता की तरफ जुड़ाव दे रहा था, जिसमें कहीं न कहीं उसके अधिकारों की न्युन्यता होती जा रही थी। समान्यता उसकी दशा वैदिक कालीन समाज से निम्नतर हो रही थी, परन्तु फिर भी समाज में एक सम्मान की स्थिति नहीं कर सकती थी। वहीं पुरुष को चारों वर्गों की कन्याओं से विवाह करने का अधिकार था तथा कन्या की विवाह आयु भी आठ वर्ष सर्वोत्तम मानी जा सकती है।

(4) स्मृतिकाल से गुप्तकाल तक -

उत्तर वैदिक काल से स्मृतिकाल के समय तक नारी की स्थिति लगातार निम्नतर होती जा रही थी। इस समय को आर्येत्तर जातियों के सम्मिश्रण का समय भी कहा जा सकता है। यह कारण भी नारी की दशा को अवनति की तरफ ले जाने में सहायक बना। धीरे-धीरे पुत्री के जन्म को दुख या शोक के रूप में मनाया जाने लगा। समाज पुरुष प्रधान बन गया, जिसमें पत्नी के अधिकार कम होते गए तथा समाज को चलाने या वंश को आगे ले जाने के साधन के रूप में स्त्री को देखा जाने लगा। इसके पीछे एक कारण इसे भी माना जा सकता है, क्योंकि नारी को शिक्षा की अधिकारिणी के रूप में ही देखना बंद कर दिया गया तथा वैदिक काल से संस्कारों के जो अभिप्राय चले आ रहे थे, उसके वास्तविक अर्थ समाप्त हो गए यथा विवाह पूर्व नारी के उपनयन हेतु वेदाध्ययन का होना आवश्यक भी नहीं रहा। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति जैसे ग्रन्थों में स्वयं ऋषि ने कहा कि स्त्री का उपनयन संस्कार नहीं होना चाहिए (मनु० 2/66)। उसके लिए विवाह ही उपनयन माना जाने लगा प्राय: अर्थात केवल गृहस्थ जीवन को सम्भालना ही उसका परम धर्म और संस्कार माना जाने लगा और उसमें चलकर तो इस संस्कार (उपनयन) को स्त्री के सम्बन्ध में करना मना ही कर दिया गया तथा उसे शूद्र की श्रेणी में माना जाने लगा, जिसका कार्य केवल सेवा करना था। नारी के अधिकारों का हनन होने के साथ-साथ उसके विवाह सम्बन्धी स्वंयवर चुनने की प्रक्रिया पर भी प्रतिबन्ध लगा कर प्रतिलोम विवाह तक सीमित कर दिया अर्थात् उच्च वर्ग की कन्या अपने से निम्न वर्ग में विवाह जाने लगी। वही आठ प्रकार के विवाहों (ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, राक्षस, गान्धर्व, पैशाच) में से प्रथम चार को धार्मिक विवाह की श्रेणी में रखा गया तथा अन्तिम चारों को अधर्म्य विवाह की श्रेणी में माना जाने लगा अर्थात् अन्तिम चारों विवाह से विवाहित नारी को समाज ने स्वीकार नहीं किया। समाज का नारी के प्रति यह भेदभाव मध्यम वर्ग में ओर भी भयावह रूप में पहुँचता जा रहा था। (हालांकि शिक्षा, सेवा में उच्च वर्ण की नारियों का दर्शन एवं साहित्य में योगदान मिलता है, परन्तु वैदिक या वेदाध्ययन करने के प्रमाण

प्राप्त नहीं होते हैं।) यथा- उच्च वर्ग की कुन्ती, द्रौपदी, देवयानी आदि का विवाह युवावस्था में हुआ था। इस काल में पर्दा प्रथा के साथ-साथ सती प्रथा के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं- रामायण, महाभारत तथा अनेक स्मृति ग्रन्थों में प्रर्दा प्रथा के अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। जिससे पता चलता है कि प्रर्दा-प्रथा का प्रचलन होक्षगया था। इसके साथ-साथ नारी के सती होने के अनेक प्रसंग मिलते हैं, यथा- महाभारत में माद्री, देवकी, भद्रा, रोहिणी, रूक्मिणी, गान्धारी, हैमावती, जाम्वती के सती होने के प्रमाण मिलते हैं। इन सब प्रसंगों के साथ अनेक प्रसंग ऐसे भी प्राप्त होते हैं, जहाँ पर पर्दा तथा सती होने के विरोध में भी प्रमाण मिलते हैं। इस सन्दर्भ में पूर्णतया यह कहा जा सकता है कि कहीं न कहीं ये प्रथाएँ समाज में घर कर चुकी थी तथा इसे धर्म के साथ जोड़कर आवश्यक भी बना दिया गया था। उच्च वर्ण तथा क्षत्रिय वर्ण में अर्थात् राजघरों में इन प्रथाओं के सम्बन्ध में ज्यादा प्रमाण मिलते हैं, जिनसे यह भी पता चलता है कि इन प्रथाओं का प्रारम्भ यहीं से हुआ था। इसके साथ-साथ नारी के आर्थिक अधिकार भी निम्नतर स्थिति में पहुँच गए, जहाँ उन्हें विवाहित होने पर केवल स्व सम्पति अर्थात् जो कुछ विवाह अवसर पर स्त्रीधन उसे प्राप्त हुआ है, सिर्फ उसी की अधिकारिणी माना जाने लगा। मनु ने भी केवल विभिन्न अवसरों पर प्राप्त हुए उपहारों को ही स्त्रीधन माना है। वहाँ कहा गया कि इस धन की अधिकारिणी स्त्री सह्या,है, जिसे पुरुष को उससे नहीं लेना चाहिए तथा सी भी पति की अनुमति होने पर ही वह इस धन को किसी ओर को दे सकती थी। अतः इन सब साक्ष्यों से पता चलता है कि वैदिक काल में जो स्थिति नारी की थी, वह परवर्ती काल में परिवर्तित होती गई तथा गुप्तकाल तक अवनति को प्राप्त हो गई। जिस सी को वैदिक युग में अर्धागिनी या समस्त कायों की कर्ता के रूप में माना जाता था, उसकी स्थिति अब ऐसी होती गई कि वह स्वयं के निर्णय लेने के लिए भी पुरुष पर निर्भर होने लगी। जिन सम्बन्धों को पल्वित करने में सबसे बड़ा योगदान हमेशा से उसका रहा है, उस सम्मान को भी देने को समाज मौन होता गया तथा धीरे-धीरे इसे धर्म का हिस्सा बनाकर स्त्री को अमानवीय स्थिति में पहुँचा दिया। जिन नकारात्मक तथ्यों को किसी भी समाज द्वारा स्वीकार नही किया जाना चाहिए था, कहीं न कहीं वे साहित्यिक रूप में होने के कारण भी समाज के अंग बनते गए, जिसका विरोध बहुत आवश्यक है। अत: कहा जा सकता है कि नारी की स्थिति वैदिक काल से ही संक्रमणकालीन स्थिति में रही है, जो निरन्तर निम्तर होती गई। वर्तमान समय में हमारा संविधान नारी को वो सब अधिकार देता है, जो एक पुरुष को प्राप्त है तथा इसके लिए अनेक नियम भी बनाए गए। परन्तु समय के साथ-साथ जो भावनाएँ पुरुष ने अपने पुरुषत्व को दिखाने के लिए समाज में अपनाई वो कहीं न कहीं समाज में आज भी दिखाई पड़ती है। हालांकि समय बहुत परिवर्तित भी हुआ है, नारी ने अपने अधिकारों के लिए लड़ना भी शुरू किया है। स्त्रियों को शिक्षित करने की दिशा में भी भरसक प्रयास किए जा रहे हैं। क्योंकि समाज की किसी विचारधारा को परिवर्तित करने का महत्त्वपूर्ण विन्दु शिक्षा ही है, जो संस्कारों के में घर करती है तथा यही विचार समाज को चलाने में सहायक होते हैं। इन्हीं वैचारिक संकिर्णताओं को दूर करते हुए एक साथ चलने का भाव ही समाज की उन्नति में सहायक है, यही विचार पुरुष को स्वीकार करना चाहिए तथा प्रत्येक मनुष्य को अपने सामने वाले मानव का चाहे वो नारी हो या पुरुष सम्मान जनक स्थान देना चाहिए।

2.2.महाभारत के द्रौपदी प्रकरण से सम्बन्धित नारी अस्मिता के मूल्य

समाज परिवर्तन के साथ ही नारी की स्थिति (दशा) में भी व्यापक परिवर्तन हुआ है, जिसका ज्ञान हमें विभिन्न कालों में रचित ग्रन्थों व साहित्यिक रचनाओं से होता है, क्योकि साहित्य समाज का दर्पण होता है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि कोई भी कृत्ति अपने काल के समाज का प्रतिबिम्ब होती है, क्योकि वह उस समाज की सभ्यता, संस्कृति, स्थिति, दशा, दिशा आदि को अपने में संजोए होती है। अत: यहाँ विभिन्न ग्रन्थों से नारी विषयक विचार प्रस्तुत किया जा रहे हैं-

महाभारत सभापर्व 69.4-13

स्वयंवरे यास्मि नृपैईष्टा रङ्गे समागतः।

न दृष्टपूर्वा चान्यत्र साहमद्य सभां गता।।4।।

द्रौपदी ने कहा- हाँ! मैं स्वयंवर के समय सभा में आयी थी और उस समय रंगभूमि में पधारे हुए राजाओं ने मुझे देखा था। उसके सिवा, अन्य अवसरों पर कहीं भी आज से पहले किसी ने मुझे नहीं देखा। वही मैं आज सभा में बलपूर्वक लायी गयी हूँ।

यां न वायुर्न चादित्यो दृष्टवन्तौ पुरा गृहे।

साहमद्य सभामध्ये दृश्यास्मि जनसंसदि।। 5 ।।

पहले राजभवन में रहते हुए, जिसे वायु तथा सूर्य भी नहीं देख पाते थे, वही मैं आज इस सभा के भीतर महान् जनसमुदाय में आकर सबके नेत्रो की लक्ष्य बन गयी हूँ।

यां न मृष्यन्ति वातेन स्पृश्यमानां गृहे पुरा।

स्पृश्यमानां सहन्तेऽद्य पाण्डावास्तां दुरात्मना।। 6 ।।

पहले अपने महल में रहते समय जिसका वायु द्वारा स्पर्श भी पाण्डवों को सहन नहीं होता था, उसी मुझ द्रौपदी का यह दुरात्मा दु शासन भरी सभा में स्पर्श कर रहा है, तो भी आज ये पाण्डु कुमार सह रहे हैं।

मृष्यन्ति कुरवश्चे में मन्ये कालस्य पर्ययम्।

स्नुषां दुहितरं चैव क्लिश्यमानामनर्हतीम्।।7।।

मैं कुरुकुल को पुत्रवधू एवं पुत्रीतुल्य हूँ। सताये जाने के योग्य नहीं हूँ, फिर भी मुझे यह दारुण क्लेश दिया जा रहा है और ये समस्त कुरुवंशी इसे सहन करते हैं। मैं समझती हूँ, बड़ा विपरीत समय आ गया है।

किं न्वतः कृपणं भूयो यदहं स्त्री सती शुभा।

सभामध्यं विगाहेऽद्य क्व नु धर्मो महीक्षिताम्।।8।।

इससे बड़कर दयनीय दशा और क्या हो सकती है कि मुझ जैसी शुभकर्मपरायणा सती-साध्वी सी भरी सभा में विवश करके लायी गयी है। आज राजाओं का धर्म कहाँ चला गया।

घा स्त्रियं सभां पूर्वे न नयन्तीति नः श्रुतम्।

स नष्टः कौरवेयेषु पूर्वो धर्मः सनातनः।।9।।

मैने सुना है, पहले लोग धर्मपरायण स्त्री को कभी सभा में नहीं लाते थे, किन्तु इन कौरवों के समाज में वह प्राचीन सनातन धर्म नष्ट हो गया है।

कथं हि भार्या पाण्डूनां पार्षतस्य स्वसा सती।

वासुदेवस्य च सखी पार्थिवानां सभामियाम्।।10।।

अन्यथा मैं पाण्डवों की पत्नी, धृष्टद्युम्न की सुशीला बहन और भगवान् श्री कृष्ण की सखी होकर राजाओं की इस सभा में कैसे लायी जा सकती थी।

तामिमां धर्मराजस्य भार्यां सदृशवर्णजाम्।

ब्रूत दासीमदासी वा तत् करिष्यामि कौरवाः।।11।।

कौरवो! मैं धर्मराज युधिष्ठिर की धर्मपत्नी तथा उनके समान वर्ण की कन्या हूँ। आप लोग बतावें, मैं दासी हूँ या अदासी? आप जैसा कहेंगे मैं वैसा ही करूँगी।

अयं मां सुदृढं क्षुद्रः कौरवाणां यशोहरः।

क्लिश्नाति नाहं तत् सोढुं चिरं शक्ष्यामि कौरवाः।।12।।

कुरुवंशी क्षत्रियों! यह कुरुकुल की कीर्ति में कलङ्क लगाने वाला नीच दुःशासन मुझे बहुत कष्ट दे रहा है। मैं इस क्लेश को देर तक नहीं सह सकूँगी।

जितां वाप्यजितां वापि मन्यध्वं मां यथा नृपाः।

तथा प्रत्युक्तमिच्छामि तत् करिष्यामि कौरवाः।।13।।

कुरुवंशियो! आप क्या मानते हैं? मैं जीती गयी हूँ या नहीं मैं आपके मुँह से इसका ठीक-ठीक उत्तर सुनना चाहती हूँ। फिर उसी के अनुसार कार्य करूँगी।

यहाँ वैशम्पायन द्रौपदी के चेतावनी युक्त विलाप का वर्णन करते हैं, जहाँ दुःशासन द्रौपदी को घसीटते हुए ला रहा है। जिस कारण वह बार-बार पृथ्वी पर गिर पड़ती है तथा सभागार तक अपमानपूर्वक लाए जाने पर वह कहती है, कि- जो कार्य विवाहिता होने के पश्चात् अब तक नहीं किया गया, वह अभी उसके साथ हो रहा है। जिस राजमहल में उसे सम्मान के साथ लाया गया, वहाँ उसका अपमान किया जा रहा है तथा सभी वरिष्ठ लोग भी बैठकर इस दृश्य को देख रहे हैं, तो वह कहती है कि उसे भी अपनी अस्मिता, अपने आत्म सम्मान व स्वाभिमान के लिए वह कार्य कर लेने चाहिए, जो आज तक उसने नहीं किए है अर्थात् जिन मूल्यों को आज तक उसे समझाया गया, उनके विषय में वह अपने वरिष्ठ लोगों से प्रश्न करते हुए कहती है कि- सबसे पहले तो मैं अपने धर्म का पालन करते हुए सब वरिष्ठ जनों को प्रणाम करती हूँ, जो मैं अब तक घबराहट तथा अपमान के कारण नहीं कर पाई। द्रौपदी कहती है कि मैं सबसे पहले स्वंयवर के समय में ही सभा में आयी थी, उसके अलावा अन्य किसी भी अवसर पर किसी ने मुझे नहीं देखा तथा इस विषय को सदैव मेरे सम्मान से जोड़ा गया, तो अब वह सम्मान कहाँ गया कि जो आज मैं यहाँ तक घसीट कर लाई गई हूँ और सभा के भीतर सभी लोगों के नेत्रों का लक्ष्य बनकर रह गई हूँ। क्या ये वही पांडव है? जो पहले मेरा वायु के द्वारा होने वाला स्पर्श भी सहन नहीं कर सकते थे और आज इस दुष्ट दुःशासन के द्वारा अपमानित किए जाने चुपचाप बैठे हैं।

मैं कुरूवंश की पुत्रवधू सदैव पुत्री के समान समझी गई हूँ, तो आज किस कारण वही सब कुरुवंशी मेरे अपमान को सहन कर रहे हैं, क्या आज मैं उनकी पुत्री नहीं रही हूँ अथवा इस वंश का 'स्त्री सम्मान' करने का कुल धर्म नष्ट हो गया है। पर भी मैं पाण्डवो की पत्नी, कृष्ण की सखी, क्षत्रिय वर्ण की कन्या आज आप सबके लिए दासी के समान हो गई हूँ, जो मेरे साथ इस प्रकार का व्यवहार किया जा रहा है। इस प्रकार अपने प्रश्नों को पूछती हुई द्रौपदी कहती है कि मैं इन सब प्रश्नों का उत्तर आप सब आर्यजनों के सुनना चाहती हूँ ताकि मैं उसी के अनुकूल व्यवहार कर सकूँ। क्या सचमुच मैं आप सब लोगों के लिए जुए मे जीतने वाली एक वस्तु मुख से के समान आज हो गई हूँ?

पूर्व विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीनकाल अर्थात् हमारी वैदिक सभ्यता से ही नारी को सदैव सम्माननीय दृष्टि से देखा गया। जहाँ उसे समझौते करने पड़े वहाँ उसने समझौते भी किए, परन्तु जहाँ परिस्थितियाँ विषम हो गई अर्थात् समाज में समझौता हीन संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई तब नारी ने अपने आत्मस्वाभिमान की रक्षा के लिए पुरुष प्रधान समाज में निहित स्त्री के प्रति दोहरी मानसिकता पर कुठाराघात करते हुए, अपने अधिकार व सम्मान के लिए प्रयास भी किए। यह स्थिति हम महाभारत के सभापर्व में द्रौपदी के चेतावनी युक्त विलाप के रूप में दिखाई पड़ती है, जहाँ द्रौपदी सभा में उपस्थित समस्त सभासदों से उसके प्रति किए गए दुर्व्यवहार के विषय में प्रश्न करती है और नारी समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए नारी के प्रति समाज में व्याप्त दोहरी मानसिकता व दोहरे मापदण्डों को अभिव्यक्त करती है कि क्या ये सभी सभासद वही हैं, जिन्होंने सदैव मुझे सम्माननीय दृष्टि से देखा और आज मेरे इस अपमान को देखकर भी चुप है। क्या वास्तव में आप सब उस सम्मान के पात्र रहे हैं, जो मेरे द्वारा आप सबको दिया गया है। क्योंकि जो इस कृत्य को करते हुए देख रहा है, वह भी इस दुष्कृत्य में उतना ही भागीदार है जितना की यह दुःशासन।

इस प्रकार द्रौपदी सम्बन्धि इस प्रकरण से उस समय के समाज मेंनारी अस्मिता सम्बन्धि मूल्यों का तो ज्ञान होता ही है, साथ ही नारी की अस्मिता सम्बन्धि सामाजिक मानसिकता को भी प्रश्नचिह्न अंकित करती है, जिसमें एक तरफ तो नारी की

पूजा अर्थात् सम्मान देने पर वहाँ देवताओं का वास बताया गया है तथा दूसरी तरफ उसके साथ क्रुर व अमानवीय व्यवहार किए जाने पर भी किसी प्रकार का विरोध अथवा उसे रोकने का प्रयास भी नहीं किया जाता। इस प्रकरण से ज्ञात होता है कि नारी समाज में सहभागी तो है, परन्तु उसे वह स्थान नहीं दिया जाता, जो दिया जाना चाहिए। इन धारणाओं को तभी तोड़ा जा सकता है, जब समाज यह स्वीकार करे कि स्त्री की अपनी प्राकृतिक विशेषताएँ है, वह स्त्री को केवल स्त्रीत्व के बंधन में ही न बांधे अपितु समाज उसके मनुष्यत्त्व को स्वीकार करे। अगर ऐसा नहीं होगा तो इस समझौताहीन संघर्ष से ही नारी की अस्मिता का निर्माण हो सकेगा।

अत: यह भी कहा जा सकता है कि स्त्री को मनुष्यत्व रूप में न देखने की भावना ने भी स्त्री विमर्श, स्त्रीत्ववाद, स्त्री सशक्तिकरण, स्त्रीवादी चिंतन, स्त्री अस्मिता मूल्य आदि विषयों को उभारा है। इसके लिए आवश्यक है कि नारी अस्मिता मूल्यों को प्रभावी बनने के लिए अपने को स्वयं सशक्त करे तथा संगठित होकर प्रयास करे और पुराने जीर्ण हो चुके विचारों व धारणाओं को बदलकर नए विकल्पों का निर्माण करें।

2.3. वराहमिहिर का नारी समर्थक दृष्टिकोण

वराहमिहिर

वराहमिहिर अवन्ति के निवासी थे। माता का नाम सत्यवती तथा पिता का नाम आदित्यदास था। इनके पुत्र का नाम पृथुयश था, जिसने 'षट्पञ्चाशिका' की रचना की। अपने पिता से ही इन्होंने ज्योतिष विद्या का अध्ययन किया। (वृहद्जातक उपसंहार श्लोक)। वराहमिहिर ने अपने स्वरचित ग्रन्थ पञ्चसिद्धान्तिका में गणित का आरम्भ वर्ष 527 शक अर्थात् 505 ई० माना है। इस आधार पर उनका जन्म का समय छठी शताब्दी का आरम्भिक काल माना जाता है। इन्हें यवन भाषा का भी ज्ञान था, इस कारण इन्होंने यवन ज्योतिष शास्त्र को भी परिभाषित किया। वराहमिहिर के ग्रन्थ

(1) पंचसिद्धान्तिका - यहाँ ब्रह्म, सूर्य, पोलिश (पुलिस्त), रोम व वशिष्ठ पाँच सिद्धान्तों का संग्रह उदाहरण सहित मिलता

है, जिसका रचनाकाल 505 ई० माना है। परन्तु

(2) बृहद्योग यात्रा - वर्तमान में यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, वराहजातक में वराहमिहिर ने इसमें 18 अध्ययन होने का संकेत किया है।

(3) वृद्जातक-इसे होराशास्त्र भी कहते हैं जो कि 25 अध्यायों में है।

(4) विवाह पटल - यह कृति भी अनुपलब्ध उल्लेख वृहतसंहिता में प्राप्त होता है।

(5) लघु जातक वृहदजातक का लघुरूप जिसमें मात्र 177 श्लोक है।

(6) बृहत्संहिता - यह ग्रन्थ 100 से 105 अध्यायों में विभक्त है, जहाँ पहले 10 अध्यायों में ग्रह-भ्रमण तथा ग्यारहवें अध्याय में धूमकेतुओं का निरूपण है।

12-10 अध्याय - सप्तर्षियों का वर्णन

14 अध्याय - सम्पूर्ण भूमण्डल को कूर्म चक्र बताया है।

15-16 अध्याय गृहों एवं नक्षत्रों के अधीन वस्तुएँ बनाई है।

17-18 अध्याय. ग्रह युति व चन्द्र समागम का विवेचन है। पृथ्वी पर होने वाले फल

21-23 अध्याय वर्षा तथा बादलों के विषय में

19वाँ अध्याय

24-25 अध्याय वर्षा का विवेचन

26-38 अध्याय विभिन्न उत्पातों का फल विषय में भविष्यवाणी

40-42 अध्याय फसलों की उत्पति, महंगाई आदि विषय

43-53 अध्याय - राजाओं के लिए आवश्यक बातें, शरीर चिह्न, वास्तु के विषय में वर्णन।

54-60 अध्याय - पानी की सत्ता, वृक्ष चिकित्सा, मंदिर निर्माण, प्रतिमा प्रतिष्ठा विधि।

61-70 अध्याय- हाथी गाय कुत्ता, घोड़ा, पुरुष-स्त्री लक्षण शास्त्र को बताया है।

71-73 अध्याय- छत्र चवंर आदि का लक्षण

74 वां अध्याय- स्त्री प्रशंसा।

75 - 79 अध्याय - पति प्रेम वृद्धि उपाय, काम वर्धक जड़ी बूटियाँआदि का निर्माण।

80 - 85 अध्याय- विविध रत्नों की परीक्षा व लक्षण।

86 - 97 अध्याय- विभिन्न प्राणियों की चेष्टाओं से शुभाशुभ संकेतों का कथन।

98-100 अध्याय- नक्षत्र तिथि व करण सम्बन्धि बातें।

101-102 अध्याय - नक्षत्र चक्र व राशि चक्र के विषय में।

इस प्रकार 100 से अधिक अध्याय मिलते हैं।

वर्तमान में वृहत्संहिता की एक संस्कृत टीका प्राप्त होती है, जो भट्टोत्पल द्वारा रचित है। इसके पश्चात् पण्डित श्री अच्युतानन्द झा शर्मणा, श्री कृष्णदमन, श्री बी सुब्रह्मण्यम् शास्त्री आदि आचार्यों द्वारा रचित हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद सहित सम्पूर्ण संहिता प्राप्त होती है।

(7) समास संहिता - यह ग्रन्थ भी सम्प्रति उपलब्ध नहीं होता, जिसका उल्लेख भट्टोतपल ने किया है। इन सब ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ भी वराह के नाम से मिलते ये ग्रन्थ वराहमिहिर द्वारा ही विरचित हैं, इसमें संदेह है।

इस प्रकार वर्तमान में वृहज्जातक तथा वृहत्संहिता के नाम से ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, जो वराहमिहिर के पाण्डित्य, विस्तृत ज्ञान का परिचय करवाते हैं।

वराहमिहिर रचित वृहद्संहिता का विभाजन अध्यायों में किया गया है, जिनकी संख्या कहीं 100 तथा कहीं 100 से अधिक भी प्राप्त होती है, इसी कारण वृहदसंहिता के 'स्त्री प्रशंसाध्याय' की संख्या कहीं 73 तथा कहीं भी 74 मिलती है।

स्त्री प्रशंसा अध्याय (74.1-15)

जये धरित्र्याः पुरमेव सारं पुरे गृहं सद्मनि चैकदेशः।

तत्रापि शय्या शयने वरा स्त्री रत्नोज्ज्वा राज्यसुखस्य सारः।।१।।

राजा के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी पर भी उसमें केवल अपनी राजधानो सार है तथा उस राजधानी में अपना घर, अपने घर में अपने

रहने का स्थान, अपने रहने के स्थान में शय्या और शय्या पर रत्नों से भूषित स्त्री राज्य सुख का सार है।

रत्नानि विभूषयन्ति योपा भूष्यन्ते वनिता न रत्नकान्त्य।

चेतो वनिता हरन्त्यरत्ना नो रत्नानि विनाङ्गनाङ्गसङ्गम्।।२।।

स्त्री रत्नों को भूषित करती है, किन्तु रत्न कान्ति से स्त्री नहीं भूषित होती, क्योंकि रत्नरहित स्त्री भी चित्त को हर लेती है किन्तु स्त्री के अङ्ग सङ्ग के विना रत्न चित्त को नहीं हर सकता है।

आकारं विनिगूहतां रिपुबलं जेतुं समुत्तिष्ठतां

तत्रं चिन्तयतां कृताकृतशतव्यापारशाखाकुलम्।

मन्त्रिप्रोक्तनिषेविणां क्षितिभुजामाशङ्किनां सर्वतो

दुःखाम्भोनिधिवर्तिनां सुखलवः कान्तासमालिङ्गनम्।। 3 ।।

सुख, भय, हर्ष आदि आकार को छिपाते हुये, शत्रु की सेना को जीतने के लिये प्रयास करते हुये, किये न किये सैंकड़ों व्यापारों की शाखाओं से व्याकुल तन्त्रों को विचारते हुये, मन्त्रियों से कथित नीति का सेवन करते हुये, पुत्र आदि से भी शङ्कित रहते हुये, दुःखार्णव में निमग्न राजाओं के लिये स्त्री का आलिङ्गन मात्र थोड़ा-सा सुख है।

श्रुतं दृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणां हादजननं

नरलं स्त्रीभ्यो ऽन्यत् क्वचिदपि कृतं लोकपतिना।

तदर्थं धर्मार्थासुतविषयसौख्यानि च ततो

गृहे लक्ष्यो मान्याः सततमबला मानविभवैः।।4।।

संसार में कहीं पर ब्रह्मा ने स्त्रियों के अतिरिक्त, ऐसा कोई रत्न नहीं बनाया, जिसके सुनने, स्पर्श करने, देखने या स्मरण करने से ही आनन्द हो। सब स्त्री के लिये धर्म और अर्थ की सेवा करते हैं। स्त्री के द्वारा पुत्र सुख तथा विषय सुख मिलता है तथा स्त्री गृह में लक्ष्मी है। अत: मान तथा विभवों के द्वारा स्त्री का आदर सदा करना चाहिये।

येऽप्यङ्गनानां प्रवदन्ति दोषान् वैराग्यमार्गेण गुंणान् विहाय।

ते दुर्जना मे मनसो वितर्कः सद्भाववाक्यानि न तानि तेषाम्।। 5 ।।

जो कोई वैराग्य मार्ग के द्वारा स्त्रियों में गुणों को छोड़ कर दोषों का वर्णन करते हैं, वे दुर्जन हैं, ऐसा मेरा अनुमान है। अत: उन दुर्जनों के वचन प्रामाणिक नहीं हो सकते हैं।

प्रब्रूत सत्यं कतरोऽङ्गनानां दोषोऽस्ति यो नाचरितो मनुष्यैः।

घाष्ट्र्येन पुम्भिः प्रमदा निरस्ता गुणाधिकास्ता मनुनात्र चोक्तम्।।6।।

स्त्रियों में ऐसा कौन सा दोष है, जिसको पुरुषों ने पहले नहीं किया अर्थात् पहले पुरुषों ने सब दोष किये पश्चात् उनसे स्त्रियों ने सीखे। पुरुषों ने अपनी धृष्टता से स्त्रियों को जीत लिया, क्योंकि पुरुषों से स्त्रियों में अधिग गुण हैं, यहाँ पर मनु ने भी कहा है।

सोमस्तासामदाच्छौचं गम्धर्वः शिक्षितां गिरम्।

अग्निश्च सर्वभक्षित्वं तस्मान्निष्कसमाः स्त्रियः।।7।।

चन्द्रमा ने पवित्रता, गन्धर्वो ने शिक्षित वचन और अग्नि सर्वभक्षित्व स्त्रियों को दिया है, इसलिये स्त्रियाँ सुवर्ण तुल्य हैं।

ब्राह्मणाः पादतो मेध्या गावो मेध्याश्च पृष्ठतः।

अजाश्वा मुखतो मेध्याः स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः।। 8 ।।

ब्राह्मण पांव से, गौ पृष्ठ से और बकरा तथा घोड़ा मुख से पवित्र होता है, किन्तु स्त्री सब अङ्गों से पवित्र होती है।

स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित्।

मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति।।9।।

स्त्रियों के समान कोई अन्य वस्तु पवित्र नहीं है, कभी भी वे दोष युक्त नहीं होती है, क्योंकि प्रत्येक मास उनका रज उनके पापों का नाश कर देता

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः।

तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः।। 10।।

असम्मानित कुल स्त्रियाँ जिन गृहों को शाप देती हैं, कृत्या से हत की तरह चारों तरफ से वे गृह नष्ट हो जाते हैं।

जाया वा स्याञ्जनित्री वा सम्भवः स्वीकृतो नृणाम्।

हे कृतप्रास्तयोनिन्दा कुर्वतां वः कुतः शुभम्।।11।।

मनुष्यों की उत्पत्ति स्त्री से ही होती है अर्थात् भाता से साक्षात् और मार्या से पुत्र रूप करके उत्पत्ति होती है। इसलिये जाया हो या जनित्री (माता) हो, हे कृतघ्न! उन दोनों की निन्दा करने से तुम्हारा मङ्गल कहाँ से हो सकता है।

दम्पत्योर्युत्क्रमे दोषः समः शास्त्रे प्रतिष्ठितः

न तमवेक्षन्ते तेनात्र वरमङ्गनाः।।12।।

स्त्री पुरुष दोनों को व्युत्क्रम में (पर स्त्री गमन में पुरुष परपुरुष गमन में स्त्री को) समान दोष धर्मशास्त्र में कहा गया है। परन्तु पुरुष उस दोष को नहीं देखते तथा स्त्री देखती है। इसलिये पुरुषों से स्त्रियों श्रेष्ठ हैं।

बहिर्लोग्ना तु षण्मासान् वेष्टितः खरचर्मण।

दारातिक्रमणे भिक्षां देहीत्युक्त्वा विशुध्यति।।13।।

जो पुरुष अपनी स्त्री को छोड़कर पर स्त्री गमन करता है, वह बाहर की तरफ किये हुये रोम वाले गदहे के चमड़े से अपने शरीर को ढक कर छ: मास तक भिक्षा देहि वह कह कर भीख माँगने से शुद्ध होता है।

न शतेनापि वर्षाणामपैति मदनाशयः।

तत्राशक्त्या निवर्तन्ते नरा धैर्येण योषितः।।14।।

सौ वर्ष बीतने पर भी मनुष्य की विषय वासना नष्ट नहीं होती, किन्तु शारीरिक शक्ति कम हो जाने पर पुरुष उससे निवृत्त होता है और सी धैर्य से निवृत्त होती है।

अहो धायंमसाधूनां निन्दतामनघाः स्त्रियः।

मुष्णतामिव चौराणां तिष्ठ चौरेति जल्पताम्।।15।।

पवित्र स्त्रियों की निन्दा करते हुये दुर्जनों की धृष्टता, चोरी करते हुये चोर का 'चोर ठहर' ऐसा कहने की तरह है।

"स्त्री प्रशंसाध्याय" में श्लोकों के माध्यम से स्त्री की प्रशंसा की गई है। प्रथम श्लोक में स्त्री की महता को बताते हुए सारभूत रूप में उसकी महत्ता मानी है तथा कहा है कि जिस प्रकार एक राजा चाहे सारी पृथ्वी को ही विजित क्यों न कर ले, फिर भी वह निश्चित रूप से एक राजधानी बनाता है जहाँ अपना घर या महल बनाता है। उस महल में भी अपना शयन कक्ष तथा उस शयन कक्ष में भी अपनी शय्या विश्राम हेतु बनाता है, परन्तु अगर स्त्री न हो तो ये सारी सारभूत वस्तुएँ उसके लिए महत्त्वपूर्ण नहीं होगी अर्थात् (सम्पूर्ण विश्व को जीत लेने के पश्चात्) किसी भी पुरुष के जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण सारभूत तत्त्व कुछ है, तो वह उसकी स्त्री है।

दूसरे श्लोक में माना है कि स्त्री स्वयं में एक रत्न है, जो बिना रत्नों के होने पर भी मन को हर लेती है अर्थात् वह रत्नों से शोभित नहीं होती।

तीसरे श्लोक में माना है कि हर व्यक्ति को ऐसे सहारे की आवश्यकता होती है जिसे वह अपनी आशाओं और आकांक्षाओं को बताकर तनाव की स्थिति से दूर जा सके। इस स्थिति में पुरुष के लिए स्त्री या पत्नी से ज्यादा प्रेमशील कोई नहीं हो सकता, चाहे वह राजा ही क्यों न हो। ब्रह्मा जी ने स्वयं स्त्री को सबसे कीमती रत्न बनाया है जो धर्म, अर्थ और काम की साधक होती है। इसलिए उसे सदैव सम्मान देना चाहिए।

वराहमिहिर का मानना है कि जो लोग स्त्री के विशिष्ट गुणों का सम्मान न करते हुए केवल अनादर, वैराग्य से बुराई करते हैं ऐसे लोग दुर्जन होते हैं। जो यह मानते हैं कि स्त्री में यह दोष है वे गलत है, क्योंकिक्षप्रथमतया पुरुष स्वयं कुमार्ग पर चलते हैं, जिससे अपनी दुष्टता से स्त्री को भी कुमार्ग पर चला देते हैं अर्थात् स्त्रियाँ पुरुषों से हर प्रकार से अधिक गुणों वाली होती है। इस कथन को प्रमाणित करने के लिए मनु के तर्क को प्रमाण माना है, जहाँ मनु ने कहा है कि-चन्द्रमा ने पवित्रता, गन्धर्वो ने आवाज, अग्नि ने सर्वभक्षित्व स्त्रियों को प्रदान किया है।

इसी सन्दर्भ में कहा है कि अन्य प्राणि तो शरीर के कुछ अंगों से यथा ब्राह्मण पैरों से, गाये पीछे से, बकरी घोड़े आदि मुख की ओर से पवित्र होते हैं, परन्तु स्त्री अपने सम्पूर्ण अंगों से पवित्र होती है, क्योंकि उनका मासिक रजोधर्म बहने वाले रक्त के साथ सब पापों व विकारों को दूर कर देता है।

वराहमिहिर में कुलीन स्त्री और ननद के सन्दर्भ में विशेष रूप से कहा है कि-जहाँ इनका अपमान होता है, वह परिवार सदैव सर्वनाश की तरफ ही बढ़ता है अर्थात् स्त्री माता के रूप में हो या पत्नी के रूप में वह सदैव सम्माननीय तथा प्रशंसनीय होती है। इस प्रकार वराहमिहिर ने प्रत्येक पुरुष से कहा है कि अगर तुम स्त्री की किसी भी रूप की निन्दा करोगे, तो तुम्हारा कल्याण किस प्रकार हो पाएगा अर्थात् नहीं होगा।

Lecture by- Dr. Ritu Mishra

SEM. - 3rd

Department of sanskrit

Shivaji college.